स्त्रीवाद, स्त्रीचेतना और हिंदी कविता

'स्त्रीवाद' शब्द से यह साफ जाहिर होता है कि यह सिद्धांत समाज में स्त्रियों की वकालत करता है। पर सवाल यह है कि स्त्रियों की लड़ाई आखिर किसके खिलाफ है ? सिर्फ पुरुषों के खिलाफ या समाज व्यवस्था के। इस बात में कोई शक नहीं है कि भारतीय समाज में स्त्री सदियों से उपेक्षित रही है। पर सच का एक पहलू यह भी है कि २०वीं सदी के चौथे दशक तक आते-आते पुरुषों ने समाज सुधार आंदोलनों के जरिए स्त्रियों की दशा सुधारने की भरपूर कोशिश की। तब क्या स्त्रियों की लड़ाई सिर्फ पुरुषों के खिलाफ हो सकती है ? दरअसल सामंती युग से स्त्रियों के प्रति अन्याय होता चला आ रहा है। सेवा को उसका धर्म कहकर उसकी इच्छाओं को हर बार दबाया गया। कभी उसे ठगिनी कहा गया तो कभी देवी। लेकिन उसे सामान्य नारी के रूप में देखने की कोशिश नहीं की गई। उसकी संवेदनाओं के साथ नियमों की आड़ में खिलवाड़ किया गया। नारी के व्यक्तित्व के विकास पर अंकुश लगाकर पुरुष ने समाज में अपनी सत्ता कायम रखी। सदियों से दबाई गई नारी आधुनिक काल में अपनी अलग पहचान बनाने के लिए छटपटा उठी और स्त्री-अस्मिता की तलाश का मुद्दा सामने आया। स्त्री-अस्मिता की तलाश स्त्रीवाद का केंद्रीय विषय है।

अस्मिता के तलाश की अवधारणा बहुत लचीली है। इसकी गलत संदर्भों में पहचान समाज को विखंडन के कगार तक ले जा सकती है। अस्मिता शब्द को अगर 'आत्मा' का पर्याय माना जाए जो अस्मिता की तलाश का दायरा संकुचित हो जाता है। स्त्रीवाद के तहत स्त्री-अस्मिता की तलाश में अहं की विशेष भूमिका होती है। स्त्रीवाद में स्त्री अस्मिता का सवाल स्त्री के प्रतिपक्षी पुरुष को उसके विरोधी के रूप में स्थापित करता है। इसके चलते परिवार स्त्री के लिए वर्चस्व की लड़ाई का अखाड़ा बन जाता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था से लड़ने के बजाय स्त्री पुरुष के खिलाफ खड़ी दिखाई देती है। अर्धपूंजीवादी, अर्धसामंती समाज का पुरुष अपने स्वत्व पर हमले को आसानी से स्वीकार नहीं कर पाता। साथ ही अस्मिता को पाने की ललक के चलते स्त्री को पुरुष विरोध में अपने जीवन का सार दिखाई देने लगता है। दोनों यह भूल जाते हैं कि परिवार एक हित निकाय है। यह उनके संतानों के बढ़ने के लिए सबसे सुरक्षित जगह है। इस तरह देखें तो स्त्री और पुरुष का परस्पर विरोधी भाव, भावी पीढ़ी के लिए घातक साबित होता है। इससे समाज का भविष्य भी खतरे में पड़ जाता है।

परिवार को वर्चस्व की लड़ाई का अखाड़ा बनाकर आखिर स्त्री को क्या मिलता है ? गौर करें कि स्त्री जब बुलंद आवाज में खुद को वंचित कहती है तब उसका दुख काफी हल्का नजर आता है। दुख को इस तरह उछालकर स्त्री पुरुष में नैतिक चेतना नहीं जगा पाती। स्त्री की यह असमर्थता उसे असहिष्णु बना देती है और वह अपनी जिद्द पूरी करने के लिए किसी भी हद तक जाने से नहीं चूकती। स्त्री के इस आचरण के चलते पुरुष या तो अहं से परिचालित होकर नैतिकता की सीमा लांघ जाता है या फिर समाज की सहानुभूति लूटने के लिए अपनी बेचारगी का हवाला देने लगता है। कुल मिलाकर यह वर्चस्व की लड़ाई स्त्री और पुरुष दोनों को नैतिक स्खलन के कगार तक ले जाती है।

स्त्रीवाद स्त्री में यह समझ पैदा ही नहीं होने देता कि वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चलते उपेक्षित है और उसकी लड़ाई सिर्फ पुरुषों से नहीं बल्कि युगीन शोषण तंत्र, सामाजिक राजनैतिक ढांचों, आर्थिक परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक और धार्मिक अवधारणाओं से भी है। इस बात में कोई शक नहीं कि पुरुष पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रमुख ठेकेदार है, लेकिन इस व्यवस्था को टिकाए रखने में स्त्रियों की भूमिका को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता। आज भी माँ बेटी को मूक रहने का पाठ पढ़ाकर और सास नियमों के नाम पर बहू को दबाकर पितृसत्तात्मक व्यवस्था की नींव को मजबूत करती है। ये हालात इस बात की ओर साफ

इशारा करते हैं कि स्त्री की सोच में बदलाव और क्षमताओं में विस्तार लाए बगैर उसकी मुक्ति संभव ही नहीं है। स्त्रीवाद स्त्री की लड़ाई को पुरुष के खिलाफ लड़ाई तक सीमित करके उसे विरोध के लिए विरोध के रास्ते पर ले जाता है। जिसके चलते उसकी लड़ाई दिशाहीन हो जाती है। एक चेतना सम्पन्न व्यक्ति कभी उद्देश्यहीन लड़ाई नहीं लड़ता। इस संदर्भ में देखें तो स्त्रीवाद और स्त्री चेतना में स्वाभाविक विरोध है।

स्त्री चेतना स्त्री की समस्याओं को सही संदर्भों में समझने की अपील करती है। अस्मिता की तलाश यहाँ भी है, पर अस्मिता यहाँ 'आत्म' का पर्याय है 'अहं' का नहीं। स्त्री चेतना स्त्री को स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और न्याय के लिए लड़ने की प्रेरणा देती है। इसके लिए स्त्री विमर्श न स्त्री पुरुष के वाद विवाद का अखाड़ा है और न ही स्त्री-स्वातंत्र्य उच्छृंखलता के कगार तक ले जाने वाला जुमला। स्त्री चेतना स्वातंत्र्य की बात उठाकर स्त्री के लिए एक नई सांस्कृतिक भूमि तलाशती है। इस स्वातंत्र्य की अवधारणा में मौलिकता, आत्मसंपन्नता और दायित्वबोध अनिवार्य रूप से शामिल हैं। स्त्री-स्वातंत्र्य की अवधारणा स्त्री से उसके मानसिक क्षितिज को विस्तृत करने की अपील करती है। साथ ही स्त्री को इतना आत्मनिर्भर बना देती है कि वह समाज की करुणा बटोरने के लिए अपने अभिशप्त जीवन का हवाला नहीं देती। उसकी आत्मनिर्भरता सामाजिक स्तर पर उसकी भूमिका बदल देती है। इसके चलते उसे पराधीन बनाने वाले सामाजिक ढांचे में दरारें पड़ने लगती हैं। सामंती रूढ़ियों की जमीन टूटने लगती है और स्त्री व्यापक सामाजिक संदर्भ में अपनी भूमिका तय करने लगती है। स्त्री को सामंती रूढ़ियों की गुलामी से मुक्ति का रास्ता दिखाते हुए स्त्री की स्वातंत्र्य चेतना उसे उसकी शक्तियों के साथ-साथ उसकी सीमाओं का भी ऐहसास दिलाती है।

स्त्री चेतना स्त्री मुक्ति की लड़ाई में चौतरफा भूमिका निभाती है। एक, स्त्री में दायित्व बोध जगाती है। दूसरा, उसे आत्मनिर्भर बनाती है। तीसरा, उसे मातृत्व की शक्ति का ऐहसास दिलाकर उसमें गौरव भाव जगाती है और चौथा, उसके अंतहीन धैर्य की सीमा निर्धारित करती है। कुल मिलाकर स्त्री चेतना हथियार बनकर समाज के पूर्वग्रहों पर प्रहार करती है। यह प्रहार समाज को यह समझने के लिए बाध्य करता है कि वक्त के साथ स्त्री के बदले हुए आत्मबोध, नई अपेक्षाओं और क्षमताओं ने स्त्री-पुरुष संबंध तथा समाज के साथ स्त्री के संबंध को परखने की नई कसौटी तैयार कर दी है। इस कसौटी पर खरा उतरने के लिए पुरुष प्रधान समाज के ठेकेदारों को सदियों से दबाई गई नारी जाति के प्रति न्याय करना होगा और उसके साथ बंधुत्व का संबंध स्थापित करना होगा। यहाँ एक बात गौर करने लायक है कि स्त्री चेतना जहाँ एक ओर पुरुष प्रधान समाज के लिए नई कसौटी तैयार करती है वहीं दूसरी ओर वह स्त्री से पुरुष द्वेष की सीमाओं को पहचानने की अपील भी करती है। स्त्री चेतना की यह भूमिका स्त्री-पुरुष संबंध में एक सामंजस्य लाती है और परिवार हित निकाय बनकर नई पीढ़ी को पनपने के लिए उपजाऊ जमीन देता है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के अंतर्गत स्त्री रचनाकारों की संख्या भले ही कम हो, पर यहां स्त्री मुक्ति का मुद्दा उपेक्षित नहीं रहा। इस काल के आरंभिक दौर से ही पुरुष ने इस मुद्दे पर कलम चलाई। लेकिन वे इस बात को गलत साबित नहीं कर पाए कि स्त्री जीवन का सच एक पुरुष की तुलना में एक स्त्री ही बेहतर ढंग से लिख सकती है। पुरुष रचनाकारों में मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा, उर्मिला जैसे उपेक्षित स्त्री चरित्रों पर काव्य तो लिखा पर वे नारी को आदर्श और मर्यादा की जमीन से आगे बढ़कर नहीं देख पाए। प्रसाद ने स्त्री को 'श्रद्धा' कहा और जीवन में अमृत की धारा बनकर बहने की हिदायत दी। इस क्रम में स्त्री की इच्छाओं का संसार उपेक्षित रह गया। निराला ने 'तोड़ती पत्थर' में नारी के संघर्षशील चरित्र को तो उभारा लेकिन उनके पूरे काव्य लेखन में नारी मन की बारीकियां रेखांकित नहीं हो पाईं। पुरुष रचनाकारों के लेखन में स्त्री मानस का सच सही ढंग से न उभर पाने की सूरत में स्त्री लेखन पर विशेष रूप से नजर डालना बेहद जरूरी हो जाता है।

आधुनिक काल के शुरूआती दौर से स्त्री मुक्ति के प्रश्न ने समाज में भले ही जोर पकड़ा हो, पर पारिवारिक स्तर पर स्त्री उपेक्षा और हीनता के अंधकार में ही जी रही थी। ऐसे हालात में सुभद्राकुमारी चौहान की स्त्री चेतना ने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के अपूर्व साहस की गाथा कहकर नारी में गौरव भाव जगाया।

अगर नारी जीवन के बारीक सच की बात छेड़ी जाए तो महादेवी की कविताओं पर नजर डाले बगैर आगे बढ़ना संभव नहीं हो पाता। एक नारी का अपनी इच्छाओं के संसार को पीछे ठेलकर परिवार के नाज नखरों को उठाते हुए जीने का दर्द महादेवी की कविताओं में जीवंत हो उठा है। महादेवी ने अपनी कविताओं में पुरुष को 'देव' कहा है। उस देव के साथ रहने के लिए सामान्य नारी को देवी बनना पड़ता है। देव के पद पर आसीन पुरुष अबाध स्वतंत्रता भोगता है। पर देवी बनकर सामान्य नारी को दूसरों की इच्छापूर्ति करने वाली कामधेनू बनना पड़ता है। उसकी इच्छाओं का कोई मोल नहीं रह जाता। तभी वह अपनी 'वे मुस्काते फूल नहीं' कविता में चिर वसंत में डूबे रहने वाले देवलोक को ठुकराते हुए कहती है, ''क्या अमरों का लोक मिलेगा / तेरी करुणा का उपहार / रहने दो हे देव/ यह मेरा मिटने का अधिकार।'' पितृसत्तात्मक मूल्यों से बने परिवार में नारी से आंसू पीकर फूल की तरह खिले रहने की उम्मीद रखी जाती है। देवलोक ऐसे ही परिवार का प्रतीक है। देवलोक में बसंत का मौसम नारी की इच्छाओं की कीमत पर लाया जाता है। देवलोक को ठुकराकर महादेवी की ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती दी है।

देव को पीछे छोड़कर महादेवी असीम की ओर बढ़ती है। वह असीम से मिलकर देव को चुनौती देना चाहती है। उनके शब्दों में, ''जब असीम से हो जाएगा / मेरी लघु सीमा का मेल / देखोगे तुम देव अमरता / खेलेगी मिटने का खेल।'' 'असीम' उच्च सांस्कृतिक तथा मानवतावादी मूल्यों का प्रतीक है। असीम से मिलना एक हद तक आत्मनिर्भर बनना है। आत्मनिर्भर बनकर महादेवी पुरुष प्रधान समाज में पुरुष के अमर वर्चस्व को चुनौती देना चाहती है। इस संदर्भ में देखें तो महादेवी के काव्य में स्त्री की लड़ाई एक अर्थवान लड़ाई कही जा सकती है। महादेवी का समय काफी पीछे छूट चुका है और नया समय समाज पर अपना प्रभाव छोड़ते हुए आगे बढ़ रहा है। पर सोचने की बात यह है कि नए समय ने स्त्री चेतना को कितना प्रभावित किया और साथ ही उसमें कौन-कौन से नए तत्व जोड़े ?

20वीं सदी के अंत से लेकर 21वीं सदी के प्रथम दशक तक की कवयित्रियों की कविताओं में महादेवी की कविताओं जैसा वेदना का इकहरा साम्राज्य नहीं बल्कि स्त्री मानस का विविध रंग दिखाई देता है। इस समय की स्त्री को अपना बहुत कुछ खो देने की पीड़ा तो सताती है पर वह इसी पीड़ा में डूबी नहीं रहती। उसे खुद में छिपी संभावनाओं का ऐहसास है और यही ऐहसास उसके विश्वास का आधार भी है। इस संदर्भ में सविता सिंह की 'नयी हवाओं का संगीत' कविता की यह पंक्तियां देखी जा सकती हैं, ''वह एक औरत है / उसके पास अपनी एक फूटी कौड़ी भी नहीं / उसकी पीठ पर सदियों के नीले दाग हैं / मन में मगर नई हवाओं का संगीत'' इन पंक्तियों से यह साफ जाहिर होता है कि आज की स्त्री उपेक्षित रह जाने की बात से दुखी होकर और अभिमानिनी बनकर बैठे रहने की अदाओं को काफी पीछे छोड़ चुकी है।

आज की कवयित्रियों को नारी के आत्मसंभवा होने का ऐहसास है। वे जानती हैं कि नारी में परिवार को बांध कर रखने की क्षमता है और उसका मातृत्व संतानों के लिए घने वृक्ष की छाया जैसा है। नारी की क्षमताओं को रेखांकित करने वाली मधु० बी० जोशी की 'स्त्रियां' कविता की इन पंक्तियों पर नजर डालें, ''उनकी उपस्थिति से दीवारें घर हो आती हैं / पौरुष में निर्वासन भोग रहे बच्चे / ठौर पाते हैं / स्त्रियों के घरों में'' इन पंक्तियों में मातृत्व की शक्ति पुरुष की कठोरता के सामने ढाल बनकर खड़ी हुई सी दिखाई दे रही है। गौर से देखें तो इन पंक्तियों में परिवार में स्त्री की जगह को निर्धारित करने की कोशिश साफ दिखाई देती है।

समकालीन स्त्री चेतना सामंती रूढ़ियों से बेखौफ टकराती है उसके इस तेवर ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था को सीधी चुनौती दी है। स्त्री चेतना का यह रूप अनामिका, सविता सिंह और अनिता वर्मा की कविताओं में देखा जा सकता है। अनिता वर्मा 'नियमों में मुक्ति की एक जगह' होना चाहती हैं तो अनामिका को सदियों से सामंती रूढ़ियों के तले दबायी गई नारी की चीख के फूट पड़ने का इंतजार है। वह कहती हैं, ''जंजीरें छूमछनन उसके पैरों की / जिस दिन भी टूटेंगी - देखना- / बिन घूँघरू नाच उठेगा जंगल।'' सामंती रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का एक रूप सविता सिंह की 'अद्वितीय नाच' कविता में देखा जा सकता है। जहाँ एक औरत अपनी जगह तेजी से गोल-गोल घूम रही है और इस नाच के साथ ही उसके शरीर से जीर्ण-शीर्ण मान्यताएँ अलग होती जा रही हैं। गौर से देखें तो यह दृश्य सदियों से दबी नारी के पुनर्जन्म को सूचित करता है।

समकालीन स्त्री चेतना पितृसत्तात्मक व्यवस्था के घातक प्रभाव से ही नहीं बल्कि इस व्यवस्था को टिकाए रखने में एक स्त्री की भागीदारी से भी परिचित है। इस संदर्भ में मधु० बी० जोशी की 'परंपरा' कविता की स्त्री को देखा जा सकता है। यह स्त्री अपने मृत प्रायः शिशु के लिए आंसूओं सा खारा घोल तैयार करती है। ताकि वह शिशु आगे चलकर स्त्री बन सके। मधु० बी० जोशी के शब्दों में कुछ इस तरह की स्त्री, ''जो निकला करेगी सफर पर / नमक की पुड़िया साथ लेकर / कि बेस्वाद खाने में स्वाद मिला सके / कि वक्त-जरूरत घोल तैयार कर सके / आँसू सा खारा / न कम न ज्यादा।'' यहाँ कवयित्री ने सामंती रूढ़ियों के तले दबी एक माँ द्वारा अपनी बेटी को गुलामी के अंधकार में धकेल देने की हकीकत बयान की है। इन पंक्तियों में एक दबा हुआ व्यंग्य है। यह व्यंग्य सामाजिक हालात के प्रति कवयित्री की नाराजगी को व्यक्त करता है।

आज की स्त्री उसके प्रति समाज के उपेक्षापूर्ण रवैये से नाराज है। वह मौन-व्यथा नहीं सहती बल्कि चेतावनी देती है। आँखें दिखाने का यह तेवर अनामिका की कविताओं में देखने लायक है। यह तेवर पितृसत्तात्मक व्यवस्था में दरारें डालने की ताकत रखता है। स्त्री की उपेक्षा से नाराज अनामिका के तेवर उनकी 'स्त्रियां' कविता की इन पंक्तियों में देखिए, ''पढ़ा गया हमको / जैसे पढ़ा जाता है कागज / ... एक दिन हमने कहा / हम भी इंसान है / हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर'' इसमें कोई शक नहीं कि अनामिका की यह पंक्तियां समाज को सिर्फ चेतावनी ही नहीं दे रही बल्कि इस बात की घोषणा भी कर रही है कि स्त्री को अब दबा कर रखना मुश्किल है।

समकालीन स्त्री चेतना पुरुष को घर का मालिक मानने से इन्कार करती है। वह स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है। ये कुछ ऐसे अधिकार हैं जिन्हें कानून के सहारे हासिल करना मुश्किल है। इन अधिकारों से परिवार में स्त्री की एक अलग पहचान बनती है। पर गौर करें कि इन अधिकारों को पाने के लिए स्त्री परिवार में स्त्रीवाद से प्रेरित वर्चस्व की खोखली लड़ाई नहीं लड़ती। बल्कि परिवार में अपनी भूमिका को पुनर्परिभाषित करके बड़े तार्किक ढंग से घर पर अपना अधिकार जताती है। इस संदर्भ में अनामिका की 'यक्ष प्रश्न' कविता की यह पंक्तियां देखी जा सकती हैं, ''ये बच्चे मेरे हैं। / कौन हैं वे जो किसी के नहीं ? / ... ये मालिक क्या होता है ? / क्या होता है किसी का होना ? / कश्ती तो मेरी है / किसके हैं सातों समन्दर ?'' इन पंक्तियों से यह बात साफ जाहिर होती है कि नए समय की स्त्री चेतना पिछले युगों की तुलना में ज्यादा तार्किक है। साथ ही इसमें स्त्री जीवन में नया सवेरा लाने की ताकत भी है। हकीकत का एक पहलू यह है कि नए समय की सभी कवयित्रियों की कविताओं में अनामिका, संगीता गुप्ता, सविता सिंह, अनिता वर्मा की कविताओं की तरह स्त्री चेतना का आशाजनक स्वर नहीं दिखाई देता। इस संदर्भ में शशि पाण्डेय की कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है। इनकी कविताओं में स्त्री लाचार और बेबस दिखाई पड़ती है। स्त्री लाचारी उनकी 'भवति' संग्रह की 'शापित अहल्या' कविता में देखी जा सकती है। जहाँ अहल्या को खुद में छिपी संभावनाओं पर विश्वास नहीं है। बल्कि वह उस 'राम' का इंतजार कर रही है जो उसे अपने स्पर्श से शापमुक्त करेगा। स्त्री की बेबसी की पराकाष्ठा शशि पाण्डेय की 'मेरी माँ को दंड मत दो' कविता में नजर आती है। इस कविता की 'माँ' बेटी के जन्म को दुर्घटना मानकर उसे मौत की नींद सुला देती है। स्त्रियों की रचनाओं में स्त्री को अगर इतना बेबस दिखाया जायेगा तो उनकी मुक्ति का सपना कभी हकीकत की शक्ल नहीं ले पाएगा। पर गौर करने लायक बात यह है कि नए समय में ऐसे कवयित्रियों की संख्या अधिक है जो समाज में स्त्री को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए कड़ा संघर्ष कर रही हैं। इन्हें अपनी कविताओं में स्त्री को लाचार और

बेबस बनाकर पेश करना मंजूर नहीं है। ये कवयित्रियाँ अपनी कविताओं में नारी में छिपी संभावनाओं को ही रेखांकित कर रही हैं। इनके इरादे अनामिका के कविता की मौसी की तरह पक्के हैं। वह मौसी जो काजल की कोठरी में रहती है। काजल की तरह आंखों में बस सकती है। लेकिन उसे आंखों में बसना या माथे पर चढ़कर दिठौना बनना मंजूर नहीं। वह मोखे की दीवारों पर खुश है और कहती है, ''जानती हूँ इतना / काल की दीठ में / काजल की धार-सी सजूंगी मैं / कभी न कभी !''